

## पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन

### श्री समयसार कलश २७१

ता. ३०-०७-१९९०, जयपुर, प्रवचन नंबर ५१७

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र (है)। उसका परिशिष्ट नाम का अंतिम अधिकार (है)। उसमें अमृतचन्द्र आचार्य भगवान का एक कलश है, २७१ नंबर का कलश। उसके ऊपर अपने उपकारी (पूज्य) गुरुदेव ने व्याख्यान किया है। आखिर की बात, आखिर की उम्र में, ४५ वर्ष का अनुभव का निचोड़ (सारांश) उसमें रख दिया है। सारा माल भरा है।

यह व्याख्यान जो गुरुदेव का है, वो समझने के पहले, एक ख्याल रखने जैसी बात (ये) है कि अपने माने हुए सर्व-पक्ष को अभी ताला-पेटी में पैक (बंद) कर दो और ये बात सुनो, तो समझ में आ जायेगी। यदि अपना पक्ष रखकर सुनता है, तो ज्ञानी का क्या कहने का आशय है, (वो) ख्याल में नहीं आता। अपना पक्ष छोड़ देना, क्यों? इसके अंदर कारण है कि तेरी जो मान्यता है, पक्ष है, वो सत्यार्थ नहीं है। क्योंकि तेरी जो मान्यता सत्यार्थ होती, तो तेरे को सम्यग्दर्शन होना चाहिए (था), आत्मा के आनंद का अनुभव होना चाहिए (था)। आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का जो अनुभव तेरे को नहीं आया है, तो समझ लेना कि मेरी मान्यता में कुछ गड़बड़ है, विपरीतता है। ऐसा मान लेना सर्वथा से, अपने हित के लिए। ऐसे जान लेना कि मेरी गलती है। तो अपना जो अभिप्राय है, (उसको) एक बाजू रखो अभी और ज्ञानी क्या कहते हैं, फ़रमाते हैं, उसको सुनने की, जिज्ञासा, रुचिपूर्वक चेष्टा करना। तो समझ में आ जायेगा। नहीं तो समझमें आनेवाला नहीं है।

अनंतकाल से आत्मा, सम्यग्दर्शन यानि आत्मदर्शन के बिना दुःखी हो रहा है। वो सम्यग्दर्शन प्रगट होनेमें दो प्रकार की भूल होती है। प्रकार तो एक ही है, अज्ञान। अज्ञान के दो भेद हैं, एक कर्ताबुद्धि पर की। परिणाम भी परद्रव्य है। परिणाम की कर्ताबुद्धि और परिणाम की ज्ञाताबुद्धि, तो दो दोष हैं। तो कल बात किया था। तीन-तीन महीने का एक कोर्स है। कर्ताबुद्धि छोड़ने के लिए तीन महीना, अकर्ता का पाठ पक्का हो जाने के बाद। ये बाकी के उत्तरार्द्ध के ये तीन महीने की बात है कि मैं पर का ज्ञाता नहीं हूँ, मैं ज्ञायक का ही ज्ञाता हूँ।

पर का ज्ञाता कहना वो असद्भूत व्यवहार है, झूठा व्यवहार है और गुण-गुणी का भेद करके ज्ञान की पर्याय का ज्ञाता कहना, वो (सद्भूत) व्यवहार है। उसको गौण करके अभेद सामान्य का ज्ञाता बनना, वो निश्चय है। पर को जानना असद्भूत व्यवहार है। अपने भेद को जानना सद्भूत व्यवहार है। वो दोनों प्रकार के व्यवहार का उल्लंघन करके, दो प्रकार का जो व्यवहार है, उसका लक्ष्य छोड़कर, अपना त्रिकाली सामान्य, शुद्ध चिदानंद आत्मा, चैतन्यमयी परमात्मा जो अंदर विराजमान है, उसका लक्ष्य करके, उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना, उसका नाम निश्चय है। पर का जानना असद्भूत व्यवहार, झूठा व्यवहार है। भेद को जानना सद्भूत व्यवहार है। पर को जानने का पक्ष अज्ञान है। भेद को जानना व्यवहार है।

अभेद को जानना निश्चय है। छोटी बात है। लंबी बात तो है ही नहीं। लंबी बात तो है ही नहीं, छोटी सी बात है।

तो ये व्याख्यान के अंदर आचार्य भगवानने खुदने कहा है कि ये आत्मा अपने को जानता है। स्वयं, स्वयं को जानता है। स्वयं, स्वयं को जानता है, इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है। अपने को ही आत्मा जानता है। सब आत्मा की बात है। हों! अभी! अभी की बात है। सिद्ध होने के बाद की बात नहीं है।

प्रत्येक आत्मा में एक उपयोग नाम का लक्षण प्रगट होता है। वो उपयोग में उपयोगवान आत्मा है और जानने में आ रहा है। आत्मा, आत्मा को जानता है, इसका नाम ज्ञाता है। वो स्वयं अपने को जानता है इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है। पर को जानता है इसलिए ज्ञाता है, ऐसा भी नहीं। स्व-पर को जाने है, इसलिए ज्ञाता है, ऐसा भी नहीं। गुजराती आ गया, गुजराती आ गया थोड़ा। आ जाता है। आहाहा! तो भी गुजराती सब गुरुदेव के प्रताप से समझ लेते हैं। भाव तो समझ लेते हैं। वो कर्नाटकवाले आए हैं ना?

पण्डितजी:- गुजराती भाषा कठिन ज़्यादा नहीं है।

उत्तर:- नहीं है। तो इसलिए मैं हिंदी में ही प्रवचन करनेवाला हूँ। लाचार हूँ। आहाहा! इच्छा बिना वो गुजराती आ जाती है। इच्छा नहीं है गुजराती बोलने की। आहाहा! आ जाती है।

तो अभी गुरुदेव का व्याख्यान चलता है। देखो! सबके पास बुक है, किताब। छपाया है, ११०० पुस्तक छपाया है। ११०० बोलो! आहाहा! सामने रखे तो क्या गुरुदेव ने क्या शब्द कहा, क्या अर्थ किया है, लिखने में होता है, कोर्स मालूम हो जाता है। सब अभ्यासी हो जाते हैं। आहाहा!

कलश २७१ श्लोकार्थ ऊपर प्रवचना। पहले संस्कृत की लाइन है, उसका हिंदी।

**जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह छह द्रव्यों के जाननेमात्र ही नहीं जानना।** यानि मैं ज्ञेयों को जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं जानना, नहीं मानना। उसके ऊपर शून्य नहीं करना चौकड़ा (क्रॉस) लगा देना। शून्य में से तो एक हो जाता है। शून्य बनाये ना, तो इधर ऐसा (लाइन करें) तो एक हो जाता है। लेकिन चौकड़ा (क्रॉस) करें तो एक होता नहीं है। मैं पर को जानता हूँ, ऐसी मान्यता छोड़ दो। तो आत्मा पर को जानना बंद करे, (तब) तो अँधा हो जाता है? कि नहीं। देखनेवाला हो जाता है।

पर को जानने की जो बुद्धि है, उसको कुन्दकुन्द आचार्य भगवान ने कहा (कि) वो अध्यवसान है। आहाहा! करना तो अध्यवसान है मगर अपने को (जानना) छोड़कर पर को जानने में रुक गया, ये बड़ा दोष है। जाननेवाले को तो जाना नहीं। पर को जानने में रुक गया, तो वो उभयमुख ज्ञान हो गया। ज्ञान का अज्ञान हो गया। उपयोग का दुरुपयोग हुआ।

उपयोग का सदुपयोग और उपयोग का दुरुपयोग। उपयोग तो सबके पास प्रगट होता है समय-समय पर। समय-समय पर जो लक्षण है जीव का, वो प्रगट होता है। तो वो उपयोग का दुरुपयोग (हुआ), पर को जानना। जानता हूँ मैं पर को और (पर को) ज्ञेय बनाता है, वो उपयोग का दुरुपयोग है। और उपयोग का सदुपयोग क्या, कि जो उपयोग जिसका है, उसको जानना, उसका नाम उपयोग का सदुपयोग है।

दुरुपयोग तो कर लिया, क्षम्य है। हो गया तो हो गया। पर पर्याय की बात, भूतकाल की बात भूल जाना, अभी नहीं (याद करना)। (अब) नया काम करना कि उपयोग तो आत्मा का है, ज्ञान तो आत्मा का

है, तो आत्मा को ही जानता है। सूर्य का प्रकाश सूर्य को प्रसिद्ध करता है, मकान को प्रसिद्ध करता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

**यह जो ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह छह द्रव्यों के जाननेमात्र ही नहीं जानना।** ज्ञेयों को जाननेवाला, पर ज्ञेयों को जाननेवाला आत्मा है, ऐसा नहीं जानना, नहीं मानना। आगे खुलासा आयेगा सब। गुरुदेव खुलासा (करेंगे)। सबको शंका-आशंका तो होती है कि पर को जानना व्यवहार कहा है ना? आहाहा! व्यवहार कहा है, ये निषेध करने के लिए व्यवहार (कहा) है!

एक दफ़े बम्बई में ऐसा बनाव बन गया, शांतिभाई जवेरी के यहाँ तत्व-वर्चा रात को होती थी। तो एक भाई आया। उसने कहा कि समर्थ आचार्य भगवानने व्यवहार दर्शाया है। हमको पूछा (कि सही है ना)? (हमने कहा कि-) हाँ! बराबर है। (तो) खुश हो गया। समर्थ आचार्य भगवान ने व्यवहार दर्शाया है। ऐसा मैंने कहा कि बराबर है! तो वो खुश हुआ। समझे? क्षणभर, हो। बाद में, वाक्य मेरा अधूरा था। दर्शाया है व्यवहार, मगर निषेध करने के लिए दर्शाया है। दूसरे दिन आया ही नहीं वो। कहाँ से आवे? होनहार, उसकी योग्यता नहीं पकी थी। कल पक जायेगी, ऐसा लेना। आज नहीं पकी तो कल (पक जायेगी)। वो भी सब भगवान आत्मा ही हैं ना?

स्वयं पर्याय प्रगट होती है और आत्मा जानता है कि मैं पर को जानता हूँ, वो भूल होती है उसकी, वो बताते हैं। देखो! कहते हैं, **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ**, इधर-इधर, मैं इधर हूँ। मेरी चीज़ कहाँ है? फैक्ट्री में नहीं है? पाटनी जी? नहीं? दो चार-पाँच करोड़ की फैक्ट्री, मैंने देखी है।

मुमुक्षु:- अब करोड़ों में नहीं रही।

उत्तर:- अच्छा! वो तो मालूम नहीं है। बहुत साल पहले गया था ना मैं। शुरुआत थी उसकी। तो उसका लड़का देखने के लिए, बताने के लिए (ले) गया था। तो उसके लड़के ने क्या कहा? वो कम्प्यूटर है, भले है, जड़ का कम्प्यूटर। पर ये कम्प्यूटर (दिमाग की तरफ इशारा) कोई अलौकिक है। ऐसा बोला था उसने, लड़के ने। मैंने कहा सही बात है। आहाहा! वो तो जड़ है। उसमें क्या है?

देखो! क्या कहते हैं? **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह मैं**, मैं ज्ञाता हूँ ना? ज्ञाता हूँ, तो किसका? पर का? नहीं साहब! पर का तो नहीं। पर कहीं तो अज्ञान बन जाता है। मगर स्व-पर का प्रकाशक मैं हूँ। वो भूल है। वो बताएँगे इधर। इसमें आयेगा, सब आयेगा। आहिस्ते, आहिस्ते, ज़रा टाइम लगेगा। आहिस्ते-आहिस्ते सब आनेवाला है।

**ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह छह द्रव्यों के जाननेमात्र ही नहीं जानना।** छहद्रव्य को मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा नहीं जानना, नहीं मानना। क्योंकि उसको जानने-मानने से इन्द्रियज्ञान, अज्ञान उत्पन्न हो जाता है और जिसको जानता है उसमें आत्मबुद्धि कर लेता है, ममत्व कर लेता है, ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है। भंडारी जी! ८०-८१ पेज पर लिखा है, मोक्षमार्ग प्रकाशक में। बताओ! आहाहा! कि जो इन्द्रियज्ञान पर को जानता है, उसमें ममत्व, मोह, राग, द्वेष किये बिना रहता नहीं है। इसलिए मोह छुड़ाने के लिए यह तत्वज्ञान है। आहाहा!

अधिक क्या? (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ८०-८१) जिस-तिस प्रकार से आप और शरीर को एक ही मानता है। इन्द्रियादि के नाम तो यहाँ कहे हैं परन्तु इसे तो कुछ गम्य नहीं है। अचेत होकर

**'पर्याय में अहंबुद्धि' धारण करता है; उसका धारण किया है**, तो ये इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, उसमें आत्मबुद्धि कर लेता है, ममत्व कर लेता है। जब अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, तो ममत्व छूट जाता है और निर्विकारी ममत्वभाव प्रगट अंदर में हो जाता है। एक ममत्व रागरूप है और एक ममत्व निर्विकाररूप वीतरागी ममत्व है कि मैं ज्ञायक हूँ आहाहा!

(मोक्षमार्ग प्रकाशक) **इस आत्मा को अनादि से इन्द्रियज्ञान है**; क्या कहा? अनादि से इन्द्रियज्ञान है। उपयोग का दुरूपयोग इसका नाम इन्द्रियज्ञान और उपयोग का सदुपयोग इसका नाम अतीन्द्रियज्ञान (है)। क्या कहा? उपयोग तो प्रगट होता है, सबको। समय-समय उपयोग प्रगट होता है। उपयोग के बिना आत्मा होता नहीं है। उपयोग लक्षण है और लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करता है। लक्षण, अलक्ष्य को प्रसिद्ध नहीं करता है। तो (मोक्षमार्ग प्रकाशक) **इस आत्मा को अनादि से इन्द्रियज्ञान है; उससे, आप [स्वयं] अमूर्तिक है, वह तो भासित नहीं होता परन्तु शरीर मूर्तिक है, वही भासित होता है और आत्मा, किसी को आपरूप जानकर, अहंबुद्धि धारण करे ही करे, करे ही करे।** शरीर को जानने से, शरीर मेरा है। अरे भैया! शरीर मेरा नहीं (है, ये) मैं जानता हूँ। फैक्ट्री मेरी नहीं है, (ये) मैं जानता हूँ। (तो कहें कि) तू (बस) जानता (ही) है। आहाहा! **अतः जब स्वयं पृथक भासित नहीं हुआ, तब उनके समुदायरूप पर्याय में, ही अहंबुद्धि धारण करता है।** ये इन्द्रियज्ञान संसार का कारण है। उपयोग का दुरूपयोग इसका नाम शास्त्रज्ञान है। क्या कहा? फैक्ट्री का ज्ञान तो अभी चला गया।

ज़रा शांति से सुनना। ऐसा नहीं समझना कि जिनवाणी का मैं अनादर करता हूँ। जिनवाणी तो इधर है, मेरे हृदय में बैठा है। वो जिनवाणी फ़रमाती है कि शास्त्र का ज्ञान, ज्ञान नहीं है।

आत्मा का ज्ञान, ज्ञान है। किसमें से जाना? शास्त्र में से ही जाना (है)। शास्त्र ही बोलता हैं। और प्रवचनसार में तो आया कि जो इन्द्रियज्ञान है ना, (वो) मूर्तिक है। राग तो मूर्तिक है मगर इन्द्रियज्ञान, शास्त्रज्ञान मूर्तिक है। ऐसा प्रवचनसार शास्त्र में आया है। आहाहा! कुन्दकुन्द (आचार्य) के शास्त्र में। और अमितगति आचार्य ने कहा कि इन्द्रियज्ञान पौद्गलिक है, आत्मिक नहीं है। पौद्गलिक है, आत्मिक नहीं है। कठिन लगता है। आहाहा! व्यवहार का पक्ष है ना? उसको ज्ञान मान रखा है। वो ज्ञान नहीं है, ज्ञेय है। अभी तो ज्ञान बहुत बढ़ गया, ज्ञान बहुत बढ़ गया। पहले तो भर्ती नहीं थी इस महाविद्यालय में, तब ज्ञान नहीं था। (अब भर्ती होने पर) संस्कृत का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान बढ़ गया। ज्ञान नहीं बढ़ा, ज्ञेय बढ़ा है। ज्ञान तो उत्पन्न ही नहीं हुआ, तो बढ़े कहाँ से? आहाहा! तो-तो ऐसे कोई भर्ती (ही) नहीं करे। अरे! भर्ती करे तो ही समझ में आ जावे कि इन्द्रियज्ञान मूर्तिक है, अमूर्तिक नहीं है। शास्त्र को जानना, अभ्यास करना, छोड़ने की बात नहीं है। आगे-आगे बढ़ाने की बात चलती है। अभ्यास छोड़ना ये बात नहीं है।

देखो! क्या कहते हैं? **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह छह द्रव्यों को जाननेमात्र नहीं जानना।** छहद्रव्य सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। छहद्रव्य अन्यमत में नहीं है। सर्वज्ञ भगवान के मत में ही हैं, छहद्रव्या। क्या कहा? लोक में जीतने द्रव्य है, अनंत सिद्ध ये जो द्रव्य है, इसकी व्याख्या फ़रमाते हैं। अनंत सिद्ध और अनंतानंत निगोदिया जीव सहित जीव, दो प्रकार के जीव की व्याख्या किया।

अभी पुद्गल, अनंतानंत पुद्गल और पुद्गल का पेटा विभाग की बात चलती हैं अभी (विस्तार करेगा)। देह, मन, वाणी, कर्म इत्यादि ये सब पुद्गल है। जीव की जाति नहीं है। चेतना नहीं है उसमें, जड़

है। **और धर्म-अधर्म, आकाश, काल - ऐसे छहद्रव्य**, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल छहद्रव्य हो गया। **उनके**, अभी छहद्रव्य के **उनके द्रव्य, गुण, पर्याय, वे मेरे ज्ञेय**, जानने लायक तो हैं ना? मेरा नहीं है, छहद्रव्य मेरा नहीं है। मगर जानने लायक तो है ना? जानने लायक तो ये (छहद्रव्य) हैं कि ये (आत्मा) जानने लायक है? भूल गया। भीत भूला! (खयाल नहीं आया)। बहुत भूल हो गयी है। साधारण भूल नहीं है। अक्षम्य भूल है। श्रद्धा का दोष है, चारित्र का दोष नहीं है। श्रद्धा का दोष होने से सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होगा।

**द्रव्य-गुण-पर्याय, वे मेरे ज्ञेय और मैं उनका ज्ञायक, ऐसा, कहते हैं नहीं जानना**, ऐसा अमृतचन्द्र आचार्य भगवान फ़रमाते हैं। गुरुदेव फ़रमाते हैं कि अमृतचन्द्र आचार्य भगवान इस श्लोक में ऐसा फ़रमाते हैं कि, मैं ज्ञाता और ये छहद्रव्य मेरा ज्ञेय, ऐसा नहीं है। आहाहा! छहद्रव्य तो जाना, १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान। कि आनंद आया? पर को जानने से आनंद आता नहीं है। परद्रव्य है १४ गुणस्थान, मार्गणास्थान। पर्याय को अध्यात्म में, नवतत्व को, परद्रव्य कहा है।

अभ्यास (तो) थोड़ा चाहिए। अभ्यास हो तो मज़ा आवे।

**और मैं उनका ज्ञायक, ऐसा, कहते हैं नहीं जानना**, ऐसा कहते हैं। आचार्य भगवान अमृतचन्द्रसूरि फ़रमाते हैं कि आत्मा ज्ञाता है और ये अनंत जीव, अनंत पुद्गल परमाणु, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, छह-द्रव्य, सर्वज्ञ भगवान ने कहा, वाणी में आया है। छहद्रव्य हैं। नहीं हैं, ऐसा नहीं है। हैं, मगर ये तेरे ज्ञान का ज्ञेय वो नहीं है। तेरा ज्ञान का ज्ञेय तो स्व, भगवान आत्मा है, (उसको ज्ञेय) बना ले ना? कौन ना बोलता है? कौन रोकता है? वो कर्म का उदय तेरे को रोकता नहीं है। मान्यता रोकती है, मैं पर को जानता हूँ। वो मान्यता अंदर में जाने नहीं देती।

**अब उनका कर्तापना तो कहीं दूर रहा**, छहद्रव्य, अनंतजीव, अनंतानंत पुद्गल परमाणु, आहाहा! ये हाथ मैं हिलाता हूँ वो बात तो दूर हो गयी। ओहोहो! भाषा मैं बोलता हूँ, इच्छा मैं करता हूँ। आहाहा! वो तो कर्तापना की बात तो पहले तीन महीने के कोर्स में चली गयी। तीन महीने का कोर्स था ना? आहाहा!

अब दूसरे तीन महीने के कोर्स में वो बात तो है ही नहीं, एजेंडा पर। आत्मा कर्ता और राग मेरा कर्म, ऐसा है नहीं। अभी तो मैं ज्ञाता और राग मेरा ज्ञेय, इसका निषेध करने की बात है। आहाहा! अपूर्व बात है। आत्मा है ना? सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। सर्वज्ञत्वशक्ति है आत्मा में? आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति है। जानने में आ सके। मैं नहीं जानता हूँ या कठिन पड़ता है, ऐसा नहीं रखना। इधर नहीं रखना। ये एरिया में आवे ना टोडरमल स्मारक में, तो मैं जाननेवाला हूँ, मैं ज़रूर समझूँगा, समझने का प्रयत्न करूँगा, ऐसा रखना। आहाहा!

**उनका कर्तापना तो कहीं दूर रहा, यहाँ तो कहते हैं, उनके (छह द्रव्यों के) जाननेमात्र मैं हूँ - ऐसा नहीं जानना**। कर्ता तो नहीं हूँ। मगर उसका ज्ञाता भी मैं नहीं हूँ। कर्तापना का निषेध तीन महीने कोर्स में आ गया। अभी पर का ज्ञाता मैं हूँ इसका निषेध करने की बात, इस तीन महीने कोर्स में है। वो छह महीने का कोर्स, ये छह दिन में पूरा हो जायेगा। घबराना मत। शोर्ट में, शोर्ट में।

आहाहा! गज़ब की बात है भाई! गुरुदेव फ़रमाते हैं, ये गज़ब की बात है। मैं इसका ज्ञाता नहीं हूँ, गज़ब की बात है। सच सुनने को मिलता नहीं, क्या करें? गुरुदेव फ़रमाते थे, सच सुनने मिले नहीं, निर्णय

कब करें (और) अनुभव कब करें?

(या तो परद्रव्य) रोकता है, ऐसा चलता है और या (फिर ऐसा चलता है कि) मैं पर का ज्ञाता (हूँ)। स्वपरप्रकाशक है, उसमें रुक जाता है व्यवहार में, प्रमाण में। उसमें से निश्चय निकालने की शक्ति नहीं है। **उनके (छह द्रव्यों के) जाननेमात्र मैं हूँ - ऐसा नहीं जानना।** ये अनुभव की वाणी है, अनुभवी की। ऐसा नहीं जानना कि मैं ज्ञाता और छहद्रव्य मेरे ज्ञेय, ऐसा नहीं जानना, नहीं मानना। आहाहा!

**परद्रव्यों के साथ ज्ञेय-ज्ञायकपने का संबंध भी निश्चय से नहीं है,** निश्चय यानि सच्ची बात। व्यवहार यानि झूठी बात। ऐसा टोडरमल जी साहब ने दो वाक्य लिखा है कि "निश्चयनय से जो निरूपण करने में आया हो, उसे सत्यार्थ जानकार उसका श्रद्धान अंगीकार करना" अर्थात् जाननहार जानने में आता है, ये सच्ची बात है, उसका श्रद्धान अंगीकार करना। और पर जानने में आता है यह व्यवहारनय का कथन है उसका निषेध करना। दो ही बात किया। व्यवहारनय से आगम में जितना निरूपण आता है, आगम में, जिनागम में, उसको असत्यार्थ जानकार उसका श्रद्धान छोड़ना। श्रद्धान छोड़ने की बात है। पर्याय छोड़ना, छहद्रव्य छोड़ना, कपड़ा छोड़ने की बात है ही नहीं। कौन छोड़े और कौन गृहे? आहाहा!

**परद्रव्यों के साथ ज्ञेय-ज्ञायकपने का संबंध भी निश्चय से नहीं है,** देखो! कर्ता-कर्म संबंध तो नहीं है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो नहीं है, मगर ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध भी नहीं है। वहाँ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध जो स्थापता है, वो इधर ज्ञाता-ज्ञेय के संबंध के व्यवहार में भी नहीं आता है। तो निश्चय में तो कहाँ से आवे?

मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय हूँ, ऐसे व्यवहार में आवे तो व्यवहार छूटकर अभेद होकर अनुभव हो जाता है। मगर मैं ज्ञाता और ये (छहद्रव्य) मेरा ज्ञेय, ये तो दिल्ली बहुत दूर है। मगर गुरुदेव के प्रताप से नज़दीक हो जाती है, दिल्ली भी। जयपुर से नज़दीक है (दिल्ली), बोलो! बराबर है! गुरुदेव के प्रताप से नज़दीक आ गयी है, दिल्ली।

उसका अभिप्राय बदलना है। अनुभव के काल में ज्ञेय बदल जाता है। ध्येय तो प्रथम बदलता है, वो तो तीन महीने के कोर्स में गया। मगर अनुभव के काल में ज्ञेय बदल जाता है। ये (पर पदार्थ) ज्ञेय नहीं रहता है, राग ज्ञेय नहीं रहता है, गुण-भेद ज्ञेय नहीं रहता है, पर्याय-भेद दिखाई नहीं देता है। पर्यायार्थिक चक्षु बंद हो जाती है। आहाहा!

ये तो काल बहुत ऊँचा है, अनुभव करने के लिए, भव का अंत करने के लिए। ये चौथे काल जैसा काल आ गया है, समझे तो। अपने को समझ लेवे तो काम हो जाये। एक ही अनुभव की क्रिया। दो बात बताया गुरुदेव ने ४५ साल, अनुभव और अनुभव का विषय - दो बात मुख्यपने कही। अनुभव का विषय क्या और इसका अनुभव कैसे हो सके, ये दो बात ४५ साल तक किया, उन्होंने। एक ही बात। आहाहा!

**ज्ञेय-ज्ञायकपने का संबंध भी निश्चय से नहीं है, व्यवहारमात्र से ऐसा संबंध है।** व्यवहार से नहीं, व्यवहार मात्र से। मात्र में वजन है। (मात्र) वजनीय है। भाई साहब बोलते हैं वजनीय है, वजनीय, वजनीय। **व्यवहार मात्र से ऐसा** आहाहा! संबंध कहा जाता है, (वास्तव में) संबंध है नहीं। अंदर के ज्ञाता-ज्ञेय के सद्भूत व्यवहार में साध्य की सिद्धि नहीं होती है। तो मैं ज्ञाता और ये छहद्रव्य मेरे ज्ञेय, आहाहा! ऐसे असद्भूत व्यवहारनय के पक्ष में तो साध्य की सिद्धि होनेवाली है ही नहीं।

समझ में आया कुछ? गुरुदेव फ़रमाते हैं, कुछ आया? कुछ समझ में आया? आहाहा! थोड़ा समझे ना। ज़्यादा समझे तो-तो निहाल हो जाये। जैन-तत्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, भाई! भैया। जैन-तत्वज्ञान सूक्ष्म है। इसका अर्थ? उपयोग बराबर लगाना तो समझ में आ जायेगा। सूक्ष्म का अर्थ कठिन नहीं समझना। आहाहा!

बहुत सूक्ष्म है भाई! यह व्यवहार-रत्नत्रय का राग होता है ना, धर्मात्मा को? धर्मी, साधक जीव की दशा में थोड़ा वीतरागभाव प्रगट हुआ, पूर्ण नहीं हुआ तो थोड़ा राग उसको प्रगट, पराश्रित (राग) होता है, धर्मात्मा को। व्यवहार-रत्नत्रय का (परिणाम) निश्चय-रत्नत्रय के साथ-साथ, निषेध करने के लिए, व्यवहार-रत्नत्रय का परिणाम प्रगट होता है। क्या कहा? निषेध करने के लिए व्यवहार-रत्नत्रय का परिणाम प्रगट होता है। उपादेय नहीं है। आहाहा!

राग होता है ना, धर्मात्मा को? इधर कहते हैं, **भगवान आत्मा ज्ञायक और व्यवहाररत्नत्रय का राग उसका** यानि साधक का ज्ञेय - **ऐसा वास्तव में है नहीं**। आहाहा! क्या कहा? छहद्रव्य तो दूर हो गया मगर साधकदशा में पाँच महाव्रतादि का भाव, देशव्रत का भाव पंचम गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से प्रशस्त-राग जो आता है, वो, वो वास्तव में ज्ञान का ज्ञेय नहीं है।

**भगवान आत्मा ज्ञायक और व्यवहाररत्नत्रय का राग उसका** यानि साधक का ज्ञेय - **ऐसा वास्तव में सचमुच नहीं है**। क्या कहा? है नहीं। आहाहा! वहाँ वजन आना चाहिए, तो ज्ञान वहाँ से हट जावे। उपयोग हट जावे, अंदर में आ जावे।

**बारहवीं गाथा में व्यवहार 'जाना हुआ'**, खुद ने वो प्रश्न उठाया। कोई प्रश्न करे ना कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान तो है साधक को। (तो) इधर क्यों निषेध करते हैं? तेरे हित के लिए निषेध करते हैं, सुन तो सही भैया! **बारहवीं गाथा में व्यवहार 'जाना हुआ' प्रयोजनवान कहा है, वह तो व्यवहार से बात है।** यह तो व्यवहार की बात किया है। निश्चय से तो स्व-पर को प्रकाशनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही अपना ज्ञेय है। सूक्ष्म बात है!

सुनना ज़रा शांति से। क्या कहते हैं? ज्ञान का ज्ञेय कौन है, वो बात चर्चा में आयी। तो स्व और पर, जीव और अजीव, ज्ञान की पर्याय में स्व-पर का प्रतिभास होता ही है। प्रतिभास को आप टाल नहीं सकते हैं। उसका लक्ष्य छूट जाता है, मगर प्रतिभास को आप टाल नहीं सकते हैं। दर्पण में प्रतिभास होता है, पर का और स्व का। टाल नहीं सकते (उसको)। प्रतिभास तो होता है।

तो गुरुदेव फ़रमाते हैं... ये थोड़ी सूक्ष्म बात है! क्या कहते हैं? कि **निश्चय से तो स्व-पर को प्रकाशित करनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही अपना ज्ञेय है**। स्व-पर दो ज्ञेय नहीं है। स्व-पर जो प्रतिभासता है ज्ञान की पर्याय में, जीव-अजीव, जीव-अजीव का प्रतिभास होता है। वो जीव और अजीव ज्ञेय नहीं है। दो ज्ञेय नहीं है। जीव-अजीव जिसमें प्रतिभासता है, ऐसी एक ज्ञान की पर्याय ज्ञान का ज्ञेय है। जो वहाँ आता है ज्ञेय में, तो ज्ञायक में चला जाता है, तो अभेद अनुभव हो जाता है।

ज्ञान और ज्ञायक एक चीज़ है। स्व-पर तो भिन्न है। आहाहा! ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञायक भी भिन्न है। स्व-पर दो प्रतिभासता है ज्ञान की पर्याय में, उसका नाम स्वपरप्रकाशक है। तो स्वपरप्रकाशक में, स्व और पर दो को जानता है, उसका नाम स्वपरप्रकाशक है कि स्व-पर दो प्रतिभासते हैं, ऐसी एक ज्ञान की

पर्याय जानने में आती है, उसका नाम स्वपरप्रकाशक है? स्व-पर दो को जानना ऐसा स्वपरप्रकाशक का अर्थ नहीं है। सूक्ष्म बात है!

स्व और पर, स्वच्छता है ज्ञान की, कि स्व और पर दो का प्रतिभास (होता है)। जीव और अजीव, जीव और अजीव का प्रतिभास तो ज्ञान की पर्याय में होता ही है, इसका नाम स्वपरप्रकाशक है। तो स्व और पर, दो को जानता है? कि स्व-पर जिसमें प्रतिभासता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय, ज्ञान का ज्ञेय है कि स्व-पर, दो ज्ञान का ज्ञेय है?

युगलजी साहब! गुरुदेव ने तो कमाल कर दिया (है)। इसका अर्थ है ना, उसमें लिखा है। सबके पास है, पढ़ो! आहाहा! इसमें लिखा है, उसका अर्थ करता हूँ ना मैं? क्या लिखा है? कि **निश्चय से तो स्व-पर को प्रकाशित करनेवाली अपनी**, जो ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, उसमें जीव और अजीव दो का प्रतिभास हुआ, उसका नाम स्वपरप्रकाशक है। तो स्व-पर दो को जानता है कि स्व-पर जिसमें प्रतिभासित होता है ऐसी आत्मा की ज्ञान की पर्याय जानने में आती है?

जो ज्ञान की पर्याय ज्ञेय बनती है, तो ज्ञान की पर्याय और ज्ञायक (तो) सर्वथा भिन्न नहीं हैं। कथंचित् अभिन्न होने से ज्ञायक में चला जाता है। और स्व-पर दो को मैं जानता हूँ, वो अंदर में नहीं आ सकता है। वो बाहर ही बाहर रखड़ता है।

पर को जानना वो तो अज्ञान है। मगर स्वपरप्रकाशक प्रमाण (का) वाक्य है, नय वाक्य नहीं है। वो स्व-पर दो का प्रतिभास होता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय, ऐसी ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। ज्ञान की पर्याय ज्ञेय बनती है। स्व-पर दो ज्ञेय नहीं बनता है। हाँ! ज्ञान की पर्याय में स्व-पर दो का प्रतिभास होता है, ऐसी ज्ञान की पर्याय ज्ञेय बनती है, तो वो स्व-पर पदार्थ गौण होकर गर्भित हो जाता है, ज्ञान की पर्याय में। क्या कहा?

स्व-पर, है ना स्वपरप्रकाशक? जीव और अजीव का प्रतिभास तो होता है। प्रतिभास को टाल नहीं सकते कोई। ताकत नहीं है किसी की। आहाहा! प्रतिभास तो ज़रूर होता है। तो दो का जो प्रतिभास हुआ, ऐसी एक ज्ञान की पर्याय, वो ज्ञान का ज्ञेय है, तो वो ज्ञान का ज्ञेय बन गयी तो स्व-पर गौण होकर उसमें अभूतार्थ हो गया। गौण होकर गर्भित हो गया। यानि ज्ञान की पर्याय (को) जिसने जाना, उसने स्व-पर का लक्ष्य किये बिना स्व-पर को जान लिया। आहाहा! ऐसी अपूर्व सूक्ष्म बात है!

स्व-पर को प्रकाशनेवाली अपनी ज्ञान की पर्याय, वो ज्ञान की पर्याय अपनी है कि पर की है? स्व-पर की है कि अपनी है? ज्ञान की पर्याय तो अपनी है। तो ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, जिसमें स्व-पर का प्रतिभास होता है। तो ज्ञान की पर्याय (को) जिसने जाना, निश्चय से, उसने स्व-पर को जान लिया। लक्ष्य बिना, स्व-पर के लक्ष्य बिना, जानने में आ गया। हो गया। आहाहा! गौण होकर उसमें गर्भितपने दो आ गया। एक को जानने से दो जानने में आ गया। आहाहा!

**एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।**

**समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और ॥२०॥**

आहाहा! क्या कहा? आहाहा! आत्मकथा चलती है। अनुभव कैसे होवे? अनुभव तो नहीं होता है, उसमें क्या भूल? मैं पर को जानता हूँ, ऐसा मानता है। (पर को) जानता तो नहीं है। क्या कहा? जानता



तो स्व को है। सब हो, अज्ञानी भी। जानता तो स्व को है। मानता है, मैं पर को जानता हूँ, उसका नाम मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र।

साहब! जानने में इतना दोष? आहाहा! अपने को भूल गया, पर को जाना, वही दोष है। अपने को आप भूलकर हैरान हो गया। ज्ञान जिसका है, उसको जानना छोड़ दिया। आहाहा! जो ज्ञाता-दृष्ट की उदासीन अवस्था, उसका समय-समय पर जीव त्याग करता है और परभाव को ग्रहण करता है। मैं पर को जाननेवाला हूँ। आहाहा! ऐसा पाठ है कर्ता-कर्म का।

**निश्चय से तो स्व-पर को प्रकाशित करनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही, ही** शब्द लिखा है। आहाहा! कमल बाबू क्या नाम? हाँ! कोमलचंदजी। उसके घर गए थे... हाँ! कोमलचंद जी। कोमल जैसा नाम है, ऐसा भाव भी कोमल है।

**दशा ही अपना ज्ञेय है।** ये ज्ञेय नहीं है मेरा। अपना तो माल नहीं है, शरीर तो मेरा नहीं है, मगर शरीर मेरा ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। राग तो मेरा नहीं है, मगर राग, ज्ञान का ज्ञेय (भी) नहीं है। ज्ञान का ज्ञेय तो परमात्मा है। आहाहा! ज्ञेय तो इधर(अंदर) है। तेरा ज्ञेय राग में नहीं है। तेरा ज्ञान का ज्ञेय राग में नहीं है। वो विषय भिंड के अंदर (भिंड में) बहुत अच्छा लिया था। कि क्या उसकी भूल हो गयी? कि ज्ञेय दो प्रकार का है -

**स्वपर प्रकासक सकती हमारी ।**

**तातैं वचन भेद भ्रम भारी ॥**

**ज्ञेय दशा दुविधा परगासी ।**

**निजरूपा पररूपा भासी ॥४६॥**

भूल क्या हो गयी? इधर (अंदर) ज्ञेय है, उसको उत्थाप (उखाड़) दिया, निकाल दिया और वहाँ (पर में) ज्ञेय को स्थाप दिया। तो जहाँ ज्ञेय को स्थाप दिया, वहाँ ही उपयोग जाता है। इधर उपयोग आने का प्रश्न ही नहीं है। आहाहा! ऐसा लिया था ना।

मुमुक्षु:- जानने योग्य ही नहीं माना, तो जानने का प्रश्न ही कहाँ है?

उत्तर:- प्रश्न कहाँ आया? खरेखर (वास्तव में) तो आत्मा, पर को जानता ही नहीं, तो पर तरफ उपयोग रखने (करने) की बात (ही) कहाँ रही?

ऐसा एक आत्मधर्म में गुरुदेव का वचनामृत आया है। वो परिपूर्ण है। जानने के बहाने चार-गति में रुलता है। (एक) करने का और एक जानने का, दो दोष हैं। (एक) कर्ताबुद्धि और (एक) ज्ञाताबुद्धि। पर की ज्ञाताबुद्धि।

अपने ज्ञान में ज्ञायक तो तन्मय है। ज्ञान में ज्ञायक तो तन्मय है। सबको स्व जानने में आता है, समय-समय पर और मानता है (कि) मैं राग को, शरीर को, देव-गुरु-शास्त्र को जानता हूँ। आहाहा! तेरा ज्ञेय बाहर नहीं है। ज्ञान से ज्ञेय बाहर नहीं होता है। ज्ञान ही ज्ञान है, ज्ञान ही ज्ञेय है। इसलिए ज्ञान को ज्ञान जान लेता है। ज्ञान को ज्ञान जान लेता है। जणित (जानने में आ) जाता है, ज्ञान में। ज्ञान की पर्याय जानने में आती है।

ज्ञान की पर्याय ज्ञेय है। ये फैक्ट्री ज्ञेय नहीं है। आहाहा! फैक्ट्री तो आपकी नहीं है।(पण्डितजी:

जानने लायक भी नहीं है) जानने लायक भी नहीं है। आहाहा! करने लायक तो नहीं मगर जानने लायक (भी नहीं है)। जानने लायक तो ये परमात्मा है। जो परमात्मा को जानता है, वो परमात्मा हो जाता है। जो परमात्मा को जानता है, वो परमात्मा हो जाता है। पर को जानता है आहाहा! उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता, तो परमात्मा की बात तो दूर रही। आहाहा!

अब समय निकालना है आपको। नहीं तो कहते हो कि निकालता हूँ, निकालता हूँ, ऐसे भंडारी जी बोलते ही रहते है। समझ गए? वायदा करते हैं।

मुमुक्षु:- अभी आप मना करें ना, तो और ज़्यादा चलेगी।

उत्तर:- हाँ! ...चर्चा बंद हो जाती है। हाँ! वो बराबर है। जिसका नाम बोलकर कह सकते हैं, उसी को कहते हैं। वरना तो उसको बुरा लग जाता है। सरल जीव हो तो (उसका) नाम ले सकते हैं। आहाहा! नहीं तो नाम भी नहीं ले सकते। मेरा नाम क्यों लिया सभा में? आहाहा! ऐसे गुस्सा हो जायेगा। भाई! नाम की बात नहीं है। नाम एक का है और समझना सबको है।

**स्व-पर को प्रकाशित करनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही अपना ज्ञेय है।** आहाहा! प्रदीप जी, झाँझरी जी। स्वपरप्रकाशक है। प्रतिभास तो होता है। पर स्व-पर दो को नहीं जानता है। स्व-पर जिसको अंदर प्रतिभास होता है, जिसमें, ऐसी ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। तो ज्ञान की पर्याय और ज्ञायक तो अभेद है, तो अनुभव हो जाता है। मगर मैं स्व-पर को जानता हूँ, उसमें, प्रमाण के पक्ष में अनुभव नहीं होता है। निश्चय के पक्ष में आवे, तो (बाद में) निश्चय का पक्ष छूट जाता है और प्रत्यक्ष-अनुभव हो जाता है। आहाहा! अपनी ज्ञान की पर्याय ज्ञेय है।

पण्डितजी:- 'ही' ही निश्चयनय का द्योतक है।

उत्तर:- हाँ! हाँ! ये द्योतक है, 'ही'। 'ही' और 'भी'। 'भी' प्रमाण का द्योतक है, व्यवहार है। 'ही' निश्चय का द्योतक है। आहाहा! 'ही' सम्यक्एकान्त है। 'भी' सम्यक्प्रमाण है। मगर सम्यक्एकान्त हो, तो (ही) सम्यक्प्रमाण (होता है)। (जो) 'ही' में नहीं आया, तो प्रमाणाभास है। प्रमाण कहाँ है तेरे पास?

**रागादि परवस्तु - देखो आगे! रागादि परवस्तु - परद्रव्यों को उसका ज्ञेय कहना, उसका यानि साधक का, ज्ञानी का, आत्मा का ज्ञेय कहना, वह व्यवहार से है;** यानि व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार (नय) सत्यार्थ कथन करती नहीं है, अन्यथा कथन करती है।

ऐसा पंचाध्यायी में एक श्लोक बनाया, आया कि, व्यवहारनय मिथ्या-उपदेश को देनेवाली है। गुजराती पहले। हिंदी कर लेना। व्यवहारनय मिथ्या-उपदेश को देती है। उसी कारण से वो मिथ्या है और उस पर द्रष्टि रखनेवाला, यानि श्रद्धा रखनेवाला, मिथ्याद्रष्टि है। आहाहा! राजमलजी (ने) बहुत अच्छी बात किया। और निश्चयनय सत्यार्थ है। उसके ऊपर द्रष्टि रखनेवाला सम्यग्द्रष्टि है। सम्यग्द्रष्टि हुआ नहीं, तो भी सम्यग्द्रष्टि कह दिया। चिरम-अचिरम थोड़े काल में सम्यग्दर्शन हो जायेगा। नैगमनय से बता दिया। ऐसी दो गाथा हैं। भाई साहब! हाँ! ५२८ या २९ है, पहला भाग में, शुरुआत में। नंबर याद नहीं है बराबर। उसमें है सब।

निश्चयनय का पक्ष आया तो कह दिया कि सम्यक्त्व हो गया। ये सविकल्प निश्चयनय है। अनुभव हुआ नहीं है। अनुभव हुआ नहीं है मगर अपूर्व-निर्णय हो गया है। ये देखकर, उसको समकित कह दिया।

समकित हुआ नहीं। ये तो भी होगा, अवश्य, अल्पकाल में होगा। निर्णय की ताकत भी कोई जुदा प्रकार की है।

**निश्चयनय से पर के साथ इसे** यानि मुझको **ज्ञेय-ज्ञायक संबंध भी नहीं है।** देखो! आत्मा का पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध भी नहीं है। ओहोहो! कहाँ ले जाना है? अंदर में ले जाना है। अंदर में आओ, आओ, तेरा पद इधर है। अंदर है, आओ, अंदर आओ। आहाहा! **ज्ञेय-ज्ञायक संबंध भी**, 'भी' कहने से कर्ता-कर्म (तो) नहीं, निमित्त-नैमित्तिक (तो) नहीं और ज्ञाता-ज्ञेय भी नहीं। झाँझरी जी! ऐसा है। आहाहा!

तो फिर पर के साथ मुझे अपनेपने का, स्वामित्व का और कर्तापने का संबंध होने की बात, बहुत ही दूर रह गयी। दूर रह गयी। आहाहा! जिसको आत्मा चाहिए.....

पण्डितजी:- पिछले तीन महीने में ना। पिछले तीन महीने में चली गयी (वो तो) भाई! बहुत दूर है।

उत्तर:- वो पीछे गयी। कर्ता-कर्म तो पहले तीन महीने के कोर्स में (था), वो तो दूर रही। अभी तो ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध, मैं ज्ञाता और राग मेरा ज्ञेय (ये बात चलती है)। अच्छा! राग तेरा ज्ञेय है? तो ज्ञायक कभी (तेरा) ज्ञेय बनेगा? विचार तो सही। क्रोध ज्ञेय बनता है। क्रोध मेरा कर्म नहीं है, क्रोध को मैं जानता हूँ। क्रोध आया, मैं उसको जानता हूँ। अच्छा! क्रोध ज्ञेय बनता है तेरा, तो ज्ञायक कब ज्ञेय बनेगा? जो क्रोध बनता है ज्ञेय, उसको ज्ञायक कब ज्ञेय बनेगा? अभी क्रोध मेरा ज्ञेय नहीं है। क्षमा का भाव मेरा ज्ञेय नहीं है। भगवान की पूजा का शुभराग मेरे ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। कर्ताका कर्म तो नहीं है, मगर ज्ञाता का ज्ञेय भी नहीं है।

ये जिनवाणी को जो सुनता है कुन्दकुन्द की वाणी, उस समय शुभराग होता है, वो कर्ता का कर्म तो नहीं है, मगर ज्ञाता का ज्ञेय भी नहीं है। आहाहा! जहाँ तक कर्ता का कर्म मानता है, तहाँ तक (तो) अज्ञान और ज्ञाता का ज्ञेय मानता है, तहाँ तक (भी) अज्ञान। मेरे ज्ञान का ज्ञेय तो मेरा परमात्मा है। आहाहा! मेरे ज्ञान में तो, उपयोग में उपयोग है। उपयोग में रागादि नहीं हैं। इसलिए कर्ता नहीं हूँ और नहीं है, इसलिए जानता (भी) नहीं हूँ। जो है उसको जानता हूँ। क्या कहा?

उपयोग में उपयोग है। उपयोग में रागादि नहीं है, इसलिए मैं राग का कर्ता (नहीं हूँ)। और उपयोग में वो नहीं है, इसलिए वो मेरा ज्ञान का ज्ञेय (भी) नहीं है। जो उपयोग में उपयोग है वो मेरे ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है, तो अनुभूति हो जाती है। आहाहा!

लुहाड़िया जी मनुभाई, आहाहा! मनुभाई अजमेर से आया। तो वो भी वर्ली में और मैं भी वर्ली में, कम्पाउण्ड में रहते थे। तो आवें शुरुआत में। मगर (बात) बैठे नहीं उसको, उसको बैठती नहीं थी, शुरुआत की बात हे, बाद में तो पलटा हो गया। व्यवहार का पक्ष था ना बड़ा। बाद में तो चोट गया। अब तो पक्का हो गया। ख्याल में आ गया।

वो बुद्धिगम्य विषय है। अंध-श्रद्धान का विषय नहीं है। आगम से, युक्ति से, अनुमान से, अनुभव से सिद्ध तो हो जाता है, सब। **स्वामित्व का और कर्तापने का संबंध होने की बात तो कहीं उड़ गयी।** शुरुआत में गयी वो तो। अभी तो ज्ञाता-ज्ञेय की बात का निषेध करना है।

मैं ज्ञाता और राग मेरा ज्ञेय। राग तेरा ज्ञेय है? कषाय का दर्शन करना है, तेरे को? फ़जल में (सवेरे) उठे, कोई ऐसा झाड़ूवाला आ जाये। आज तो मेरा दिन बिगड़ गया (ऐसा कहते थे)। हमारे

गुजरात में ऐसा चलता था। अब नहीं है, वो तो झूठी बात है। पहले ऐसा चलता था कि आज मेरा दिन बिगड़ गया। क्या दिन बिगड़ गया? कि आज ऐसे पुरुष के दर्शन हो गए, (तो) दिन बिगड़ गया।

तो ये राग का दर्शन करता है, कषाय का, तो दिन नहीं बिगड़ा, भव बिगड़ गया तेरा। सुन तो सही! राग तेरे ज्ञान का ज्ञेय नहीं है, सुन। ज्ञान का ज्ञेय तो परमात्मा है। भव बढ़ गया। दिन नहीं बिगड़ा, भव बिगड़ गया। यानि जो ये श्रद्धा कायम रखी, तो भव-भव बिगड़ेगा। और श्रद्धा छूट जायेगी, (तो) भव (भी) सब सुधर जायेगा। इसमें क्या है? राग ज्ञेय ही नहीं (है)। आत्मा ज्ञान का (ज्ञेय है) क्योंकि ज्ञान के साथ ज्ञायक का तन्मयपना है, तादात्म्यपना है। जो तादात्म्य है, वो जानने में आता है। राग, ज्ञान के साथ तादात्म्य नहीं है इसलिए राग जानने में आता नहीं।

दुःख है ना दुःख, वो दुःख का भोक्ता तो नहीं है। क्योंकि ज्ञान से दुःख भिन्न है, इसलिए भोक्ता तो नहीं है, मगर दुःख ज्ञान का ज्ञेय (भी नहीं है)। क्यों? क्योंकि ज्ञान भिन्न है और दुःख भिन्न है, तादात्म्य नहीं है। और ज्ञान और आत्मा तादात्म्य है, इसलिए ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है, इसका कर्ता है तो अनुभूति हो जाती है। आहाहा!

**संबंध होने की बात तो कहीं उड़ गयी। समझ में आया कुछ?** समझ में कुछ आया? आहाहा! कुछ (समझ में) आवे तो काम हो जायेगा। थोड़ा एक पैसा सत् का, एक, निश्चय का, सत् का एक पैसा का जो पक्ष आवे, तो निन्यानवे (९९) पैसे को खींच लेगा, निन्यानवे (९९) पैसे। एक पैसे की ताकत है ऐसी। सत् की हो। आहाहा!

आहाहा! **कहते हैं** - पैराग्राफ बदल गया अभी। आहाहा! **कहते हैं** - **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र नहीं जानना।** आहाहा!

एक ही एक (बात) बार-बार जब कहें, तब थोड़ा ख्याल में आवे। ऐसी पंचमकाल में बुद्धि कम हो गयी है। पहले के काल में ज़रा इशारा करें, फट समझ में आ जाता था। अभी तो उपयोग कषाय से सारे दिन ऐसा रंग चढ़ता है। उपयोग में राग का रंग चढ़ता है। राग का रंग सारे दिन चढ़ता है। आहाहा! तो उपयोग में वो सत्य बात ख्याल में आती नहीं है।

**जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र नहीं जानना।** सब कैसे प्रकार हैं? कैसे प्रकार हैं, यह कहते हैं कि, क्या लिखा है वो? सब, सब किस प्रकार है? अच्छा! किसे नहीं, किस प्रकार हैं? वह कहते हैं। किस प्रकार हैं, वह कहते हैं। इसमें लिखे हैं बड़े अक्षर से, यह हाथ का लिखा हो गया। बारीक है, पढ़ने में तकलीफ होती है।

**ज्ञेय-ज्ञान, आहाहा! तो कहते हैं, ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गन (परंतु) ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान के कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह जो ज्ञेय, ज्ञान में जानने में आता है, तो ज्ञान की पर्याय में उत्पाद-व्यय होता है, तरंग।** उसका नाम कल्लोल है।

ज्ञान का कल्लोल, जैसे समुद्र का कल्लोल होता है ना? ऐसे ज्ञान की पर्याय में कल्लोल यानि उत्पाद-व्यय होता है। वह तरंगरूप से परिणमित होता हुआ **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमात्र-वस्तुमात्रः ज्ञेयः** वो अर्थ करते हैं, **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय** ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं और ज्ञाता भी मैं, **ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना।** आहाहा!

ये (बाहर का) ज्ञेय नहीं है, तो ये क्या है? कि तू ही ज्ञेय है, तू ही ज्ञान है, तू ही ज्ञाता है। तेरे में सब कुछ है, तीन-भावा। आहाहा! बाहर में तेरा ज्ञेय (नहीं है)। बाहर में ज्ञान तो है नहीं, बाहर में ज्ञायक तो है नहीं। वो (उसमें) तो हाँ बोलता है। मेरा ज्ञान बाहर में तो नहीं है, वो सच्ची बात है। पुद्गल में आपका ज्ञान नहीं है, सच्ची बात है। अच्छा! ज्ञायक। बीच में, पैसा में ज्ञायक, वो तो बात नहीं (है)। तो क्या है? मेरा ज्ञान का ज्ञेय है। क्या कहा? मैं तो देह में लक्ष्मी में आया ही नहीं हूँ। मैं तो उससे जुदा हूँ। अच्छा? तू जुदा है और तेरा ज्ञान? कि ज्ञान तो इधर है। मेरा ज्ञान वहाँ कहाँ है? वो क्या है? कि मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञेय (धर्म) को (अंदर से) निकाल दिया। ज्ञेय को, एक धर्म को निकाल दिया (अंदर से)। तो धर्मी, ज्ञान का ज्ञेय होता नहीं है। उधर भेज दिया। (यहाँ से) निकाल दिया या निकालकर भेजा। इधर रखा ही नहीं। इधर रखा नहीं।

जानने लायक है इसको मैं जानता हूँ, (यह) एकेन्द्रिय का अनुभव है। आहाहा! मैं पर को जानता हूँ, इसका फल बहुत दुःखदायक है। प्रभु! आहाहा! जाननेवाले को जानता हूँ। आ जा ना इधर! आहाहा! इसमें क्या तकलीफ है तेरे को? कुछ तकलीफ नहीं है। एकांत हो जायेगा। कि सम्यक् एकांत हो जायेगा। व्यवहार का पक्षवाला क्या (बोलता है)? एकांत होता है, निश्चयाभासी हो जाता है। हमारे से ज़्यादा आपको पता है, बहुत। मालूम है सब! आहाहा! निश्चयाभासी बन जा।

पण्डितजी:- इधर कुछ नहीं है।

उत्तर:- इधर कुछ नहीं है।

कल एक भाई ने कहा कि जैसे भिंड के अंदर, खुलकर वाणी आती थी। इधर ऐसा ही लाना, भिंड जैसा... आठ हज़ार आदमी भिंड में। आहाहा! तब भिंडवालों ने तो कोई पत्रिका ही नहीं छपवाई (थी)। पत्रिका छपवाते तो पच्चीस हज़ार आ जाते। आहाहा! ऐसी बात सुनी। डॉक्टर साहब सब इधर हैं, भिंडवाले हैं।

वहाँ कहा था कि ज्ञेय इधर (अंदर) है। तेरा ज्ञेय वहाँ (बाहर) नहीं है। इधर से निकाल दिया तूने। ज्ञान को रखा, ज्ञायक को रखा इधर, मगर ज्ञेय को निकाल दिया। ज्ञेय को वहाँ स्थाप दिया। तो जहाँ ज्ञेय स्थापा, वहाँ ही उपयोग जायेगा। और मेरा ज्ञेय वहाँ नहीं है, मेरा ज्ञेय तो मेरे में है, तो उपयोग अंदर में आ जायेगा और अनुभूति हो जायेगी। टाईम हो गया है।

जिनवाणी स्तुति।